Chapter-1

प्रथम अध्याय

भूमिका

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय और उसकी व्याख्या

प्रस्तुत शोध का मूल विषय है 'गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा तथा आचार्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई।' शीर्षक से यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है कि गोविन्द गिल्ला भाई हिन्दी के कवि होते हुए भी भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी भाषी प्रदेश की हिन्दी काव्य परम्परा में न आ कर गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा में ही आते हैं। अत: गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा से विलग कर गोविन्द गिल्ला भाई के साहित्य का समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। गुजरात प्रदेश के गुजराती भाषी परिवार में उत्पन्न होकर भी गोविन्द गिल्ला भाई ने हिन्दी भाषा में ही प्रधानत: साहित्य सृजन क्यों किया इस प्रश्न का उत्तर गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के परिशीलन के बिना सम्भव नहीं है। अत: गोविन्द गिल्ला भाई के साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का अध्ययन भी अनिवार्यत: प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय बन जाता है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसमें प्राय: समस्त अहिन्दी भाषी प्रान्तों के लेखकों द्वारा साहित्य सृजित हुआ है। साथ ही अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी साहित्य की यह परम्परा लगभग हिन्दी के आदि काल से ही मिलने लगती है, जो इस बात का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है कि हिन्दी अपने आदि काल से ही विदेशी शासन के कारण शासन की तो नहीं, परन्तु भारतीय जनता की राष्ट्र भाषा अवश्य बन चली थी। 'राष्ट्र परिचालकों ने इस समय हिन्दी को जो मर्यादा दी है वह उसके अपने अधिकार की स्वीकृति है। यह

मर्यादा बहुत पहले ही हिन्दी को मिलनी चाहिए थी । हिन्दी का आधुनिक महत्व केवल इन दिनों के प्रचार का फल नहीं है, हिन्दी की अन्त:प्रादेशिकता कुछ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों का फल है।[१]"

गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा मूलत: हिन्दी की राष्ट्रीय परम्परा की एक विशिष्ट धारा है, जो अनेक दृष्टियों से हिन्दी भाषी प्रदेश की हिन्दी काव्य परम्पराओं से भिन्न तथा अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों की हिन्दी काव्य धाराओं से अधिक समृद्ध है । हिन्दी के इतिहासकारों द्वारा यह तथ्य उपेक्षित ही रहा है, परन्तु आधुनिक शोधों के परिणाम स्वरूप जो सामग्री प्रकाश में आयी उससे यह सिद्ध हो गया है कि हिन्दी के राष्ट्रीय रूप के विकास में अहिन्दी भाषी प्रान्तों का महत्वपूर्ण योगदान है तथा गुजरात का योगदान सर्वाधिक होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

आशय यह कि आचार्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने से पूर्व गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का विश्लेषण, विवेचन किया गया है । गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा हिन्दी की राष्ट्रीय परम्परा की एक विशिष्ट धारा है, अत: राष्ट्रभाषा के स्वरूप तथा भारतीय राष्ट्रभाषाओं की परम्परा में हिन्दी के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है ।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन मूलत: व्याख्यात्मक होते हुए भी गवेषणात्मक है । आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता, राष्ट्रभाषा आदि विषयों की सैद्धान्तिक चर्चा के साथ साथ भारतीय इतिहास की उपलब्ध सामग्री के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत प्रबन्ध में की गयी है तथा भारतीय राष्ट्र भाषाओं की परम्परा में हिन्दी के स्वरूप की व्याख्या की गयी है । आशय यह कि प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय विशुद्ध व्याख्यात्मक है जबकि शेष सभी

१- सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ : सं० डा०वासुदेवशरण अग्रवाल
शौरसेनी की प्राचीन परम्परा : डा०सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ०७६ ।

अध्याय व्याख्यात्मक होने के साथ साथ गवेषणात्मक भी है। गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा पर जो भी शोध कार्य अब तक हुआ है उसका सम्पूर्णत: उपयोग किया गया है एवं अपनी व्यक्तिगत शोध के आधार पर उसके अज्ञात अंश को प्रकाश में लाने के साथ साथ उसका विश्लेषण, व्याख्या तथा मूल्यांकन भी किया गया है। इसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन भी गवेषणा पर आधारित होते हुए भी व्याख्या, विवेचन एवं मूल्यांकन प्रधान है।

प्राक्कथन

भारतीय राष्ट्रीयता, राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि इन शब्दों के अर्थ के विषय में विचार कर लिया जाय, क्योंकि इनके मूल में प्रयुक्त शब्द "राष्ट्र" सैद्धान्तिक विवादों से मुक्त नहीं है। अत: हम सर्व प्रथम राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के विषय में विचार करने के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीयता की ऐतिहासिक व्याख्या करने का प्रयास करेंगे तथा भारत में राष्ट्रभाषाओं की परम्परा में हिन्दी के स्वरूप को स्पष्ट करेंगे जिससे हिन्दी के राष्ट्रभाषा रूप की ऐतिहासिकता सिद्ध हो सके तथा गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा के अध्ययन के लिए समुचित भूमिका बन सके और उसका वास्तविक मूल्यांकन हो सके।

अत: प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन क्रम निम्नलिखित रहेगा :-

१- राष्ट्रीयता एवं उसके प्रतिमान

२- भारतीय राष्ट्रीयता

३- भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतिमान :

- १- भाषा - परम्परा एवं हिन्दी
- २- साहित्य - परम्परा एवं हिन्दी

४- उपसंहार

१.० राष्ट्रीयता एवं उसके प्रतिमान

सम्प्रति हमारे साहित्य में राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में होता है जिस अर्थ में अंग्रेजी भाषा में 'नेशनलटी '(Nationality) या 'नेशनलिज्म ' (Nationalism) शब्दों का प्रयोग होता। अंग्रेजी के अनुसार नेशनल्टी एक भावात्मक सत्ता है जो अपने अभिव्यक्त रूप में नेशनलिज्म कहलाती है। अर्थात् नेशनलिज्म एक वाद है जिसके मूल में नेशनलटी का भाव होता है।[१] हिन्दी में इन दोनों अंग्रेजी शब्दों के लिए प्राय: राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु यदा-कदा नेशनलिज्म के लिए राष्ट्रीयतावाद और नेशनलटी के लिए राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग भी होता है। राष्ट्रीयता शब्द राजनीति-विज्ञान का पारिभाषिक शब्द है अत: प्रत्येक सिद्धान्त-सूचक शब्द के समान इस शब्द के अर्थ के भी निम्नलिखित दो स्तर विचारणीय हैं :

१- इतिहास अर्जित - सामान्य अर्थ
२- पारिभाषिक - विशेष अर्थ

१.१ राष्ट्रीयता का इतिहास अर्जित अर्थ

राष्ट्रीयता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना निश्चित है कि इस शब्द का प्रचलन हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात हुआ है क्योंकि संस्कृत के प्राचीन साहित्य में राष्ट्र और राष्ट्रीय या राष्ट्रिय शब्दों का प्रयोग तो मिलता है परन्तु राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग कहीं भी पारिभाषिक या अपारिभाषिक अर्थ में नहीं मिलता। प्राकृत अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में यह शब्द अकल्पनीय ही है। अत: स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता शब्द का आधुनिक अर्थ, इसके नव निर्मित तथा अंग्रेजी शब्द के अनुवाद होने के कारण,

---

१- Nationalism and Internationalism by Don Luizi Sturzo, p.20

इतिहास अर्जित न होकर आवश्यकतानुसार निक्षिप्त (Borrowed) है। वैसे राष्ट्रीयता शब्द का मूल प्राचीन वैदिक साहित्य में भी खोजा जा सकता है। विद्वानों की धारणा है कि राज् या राज़ धातु, जिससे राष्ट्रीयता शब्द की व्युत्पत्ति हुई है प्राचीन भारोपीय भाषा की समान-धातु समूह में से एक है[१] तथा जिसका मूल रूप Reĝ कल्पित किया गया है[२]। निरुक्तकार यास्क ने इस धातु का अर्थ प्रकाशित तथा शोभित होना माना है[३] परन्तु आधुनिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान के अनुसार इसका मूल अर्थ निर्देशित करना माना गया है[४]।

अवेस्ता में रास्तर (Rāstar) शब्द का अर्थ नेता होता है तथा लैटिन भाषा में भी रेगो (Rego) शब्द का अर्थ नेतृत्व अथवा निर्देशित करना होता है[५]। प्राचीन भारोपीय परिवार की कुछ भाषाओं में राजवाची शब्द इसी मूल धातु से बने हुए मिलते हैं यथा लैटिन Réx ईरानी Ré गाथिक Rix आदि[६]। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र शब्द मूलत: भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाओं का एक सामान्य शब्द है जिसका मूल अर्थ यद्यपि नेतृत्व अथवा निर्देशन करना होता था परन्तु भारतीय आर्य भाषाओं के प्रारम्भ होने से पूर्व ही इसका अर्थ राजा या राज्य करना जैसा होने लगा था। अंग्रेजी शब्द नेशन के इतिहास पर जब विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि यह शब्द राष्ट्र शब्द के समान अधिक प्राचीन नहीं है, इसका मूल हमें लैटिन भाषा में मिलता है अन्यत्र नहीं[७]। नेशन शब्द लैटिन के Nationem से बना है जो Natio की द्वितीय विभक्ति का रूप है Natio , Natus शब्द से बना है जिसका अर्थ "पैदा हुआ" होता है जबकि

१- Historical Linguistics in Indo-Aryan By Dr.S.M.Katre,p.43.

२- Etymologies of Yaska By Dr. Siddheswara Varma,p.17.

३- निरुक्त २.३ ।

४- Etymologies of Yaska By Dr. Siddheswara Varma P. 11.

५- Ibid,p.57.

६- Sanskrit Language - T.Burrow,p.14.

७- Nationality in History and Politics By Federick Hertz,p.6.

Natio का अर्थ कुल या जाति होता है[१]। आशय यह कि राष्ट्र शब्द मूलत: प्रशासनिक शब्द है, नेशन शब्द के समान कुल या जाति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। १८वीं शताब्दी में नेशन शब्द पश्चिमी यूरोप में बहुत कुछ आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था परन्तु पूर्वी मध्य यूरोप में १६वीं शती से पूर्व तक यह जातीय या भाषा की एकता का परिचायक माना जाता था[२]। भारतवर्ष में अंग्रेजी के आगमन से इस शब्द ने राष्ट्र शब्द के अर्थ को प्रभावित किया और आज ये दोनों शब्द समान अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं।

१।२ पारिभाषिक विशेष अर्थ

यद्यपि व्युत्पत्ति एवं इतिहास की दृष्टि से राष्ट्रीयता तथा इसके पर्याय अंग्रेजी शब्द दो भिन्न विचार-सरणियों की ओर इंगित करते हैं, परन्तु आधुनिक सैद्धान्तिक दृष्टि से समान हैं। भारत में राजनीतिज्ञों ने इस शब्द के अर्थ के विषय में इतना विचार नहीं किया जितना पश्चिम के विचारकों ने किया है। अत: सम्प्रति पाश्चात्य दृष्टि से ही इस पर विचार किया जायगा।

मध्यकाल की अंतिम शताब्दियों में रोमीय साम्राज्य के विघटन के साथ रोमीय-चर्च[३] की सत्ता के विरुद्ध यूरोप के विभिन्न राष्ट्र अपने आधुनिक रूप में आने लगे, विद्वानों ने इसी विद्रोहमूलक[४] आन्दोलन के मूल में पश्चिम में राष्ट्रीयता की भावना का कारण खोजा है, परन्तु राष्ट्रीयता की आधुनिक चेतना का अनुभव युरोप ने १८वीं शताब्दी से पूर्व[५] नहीं किया था।

१- An Etymological Dictionary of English By Welter W.Skeat M.A., p. 388.

२- Nationalism and after By Edward Hallett Corr, p. 1.

३- Nationalism : A Report by a Study group of members of the Royal Institute of International Affairs,London,p.7.

४- Ibid,p.25.

५- Nationalism and Internationalism By Dan Luizi Starzo,pp.10-12

सन् १७४६ से १८४८ के बीच राष्ट्र शब्द सर्वप्रथम अर्थ की दृष्टि से मूलत: परिवर्तित हुआ जिसकी निम्नलिखित तीन कोटियाँ विद्वानों ने मानी हैं :

१- सर्वप्रथम फ्रांस में राष्ट्र का अर्थ निरंकुश शासक के प्रतिरोध में संगठित जनता का विरोध हुआ। इस समय राष्ट्र शब्द जनता द्वारा प्राप्त एक नैतिक (Moral) एवं राजनैतिक व्यक्तित्व की स्वीकृति माना जाने लगा था।[१]

२- इसके पश्चात फिट्शे (Fichte) के प्रसिद्ध जर्मन राष्ट्र के लिए पत्र (Letters to the German Nation) में राष्ट्र की उदात्त एवं आदर्शवादी व्याख्या की गई। राष्ट्र एक स्वत: अनुभूत विचार (an idea which realizes itself) माना जाने लगा, एक ऐसा भाव माना जाने लगा जो राष्ट्र के रूप में अपनी यथार्थता सिद्ध करता है।[२] फिट्शे, हीगल और बिस्मार्क आदि दार्शनिकों ने राष्ट्र की जो आदर्शवादी व्याख्या की है उसी के परिणाम स्वरूप ३-

३- १६वीं शताब्दी में राष्ट्र शब्द धर्म, संस्कृति, भाषा, इतिहास एवं परम्परा आदि के आधार पर एक स्वतंत्र राजनैतिक इकाई का पर्याय माना जाने लगा।[३]

इस युग में राष्ट्र, राष्ट्रीयता आदि शब्दों की विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से विवेचना की है। परन्तु राष्ट्रीयता, जैसा कि इसके व्याकरणिक रूप से ही स्पष्ट है, मूलत: एक भाव या विचार ही है। इस भाव या विचार के रूप एवं प्रकृति के विषय में विद्वानों में मतभेद है परन्तु उसकी अनुभूति के सामूहिक अस्तित्व में राष्ट्रीयता की सम्भावना सभी मानते हैं। इसीलिए विद्वानों ने राष्ट्र को एक मनोवैज्ञानिक इकाई तथा सामाजिक सहज वृत्ति (Psychological unit & Social Instinct) मान कर राष्ट्रीयता की व्याख्या की है।[४] कुछ

१- Nationalism & Internationalism By Don Luigi Sturzo, p. 10.

२- Ibid, p. 11.

३- Ibid, p. 12.

४- तुलनीय है : Psychology of Nationalism and Internationalism By W.B.Pittsberry, p.

विद्वानों के अनुसार राष्ट्र एक ऐसे मानव समूह का नाम है जो अपने आप को एक अनुभव करता हो तथा जो एक निश्चित सीमा में अपने सामूहिक लाभ के लिए अपने व्यक्तियों का भी बलिदान देने को तत्पर रहता हो, एवं जिस समूह का प्रत्येक व्यक्ति समूह की उन्नति में प्रसन्न और समूह की हानि में दुखी होता है । इस ऐक्य भाव का मानवीकरण ही राष्ट्रीयता के भाव की परिभाषा है[१]। जे० एस० मिल्स के अनुसार राष्ट्रीयता का सत्त्व उसके उपभोक्ताओं की परस्पर सहानुभूति में है, अपने ही एक शासन के नीचे एक बने रहने की इच्छा में है, जो इतिहास और राजनीति के एक परम्परा मूलक समाज के द्वारा निर्मित हो तथा जो भूतकालीन सुख दुख लज्जा एवं गर्व की भावना के अनुभव से अनुस्यूत हो[२]। आशय यह कि हम उसे जनता का सामूहिक व्यक्तित्व कह सकते हैं जो भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्परा, आर्थिक स्वार्थ आदि के कारण विकसित होता है[३]। राष्ट्रीयता एक ऐसा सैद्धान्तिक विचार तथा व्यावहारिक क्रिया है जो स्वराष्ट्र का अतिमूल्यांकन कर उसे पूर्ण नैतिक तथा राजनैतिक मूलभूत सत्य सिद्ध करता है[४]। एडविन बेवन ने, इसी प्रकार राष्ट्र को (पर) प्रतिरोध एवं (स्व) परम्परा का संघटक सत्य माना है[५]। अर्थात् राष्ट्रीयता एक सम्मिलित राजनैतिक ध्येय में बधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन समुदाय के परस्पर सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से[६] प्रेरित उस भूभाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना का ही नाम है जो एक भाषा,

---

१- Nationality in History and Politics By Frederick Hertz,p.5.

२- Consideration on Representative Government By J.S.Mills,p.282.

३- Nationalism and Internationalism - Dan Luigi Skurzo,p.13.

४- Ibid,p. 25.

५- Indian Nationalism By Adwyn Bevan, p. 7.

६- राष्ट्रीयता - डा० गुलाबराय, पृ० २ ।

जति, धर्म, संस्कृति आदि द्वारा निष्पन्न तथा सिद्ध होती है[१]। लंदन की The Royal Institute of International Affairs नामक संस्था ने राष्ट्रीयता पर अपने प्रतिवेदन में राष्ट्र शब्द के अर्थ की सीमाएं इसी दृष्टि से निश्चित करते हुए कहा है कि :

राष्ट्र शब्द का प्रयोग उस मानव समूह के लिए किया जाता है जिसमें निम्नलिखित लक्षण विद्यमान हों :—

१- जिस मानव समूह के सभी सदस्यों में एक निश्चित (परस्पर) सम्पर्क का आकार और नैकट्य हो ।

२- लगभग निश्चित भू भाग हो ।

३- कुछ ऐसे लक्षण (जिनमें सर्वाधिक प्रमुख भाषा होती है) जो राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों तथा अराष्ट्रीय समूहों से भिन्न सिद्ध करते हों ।

४- कुछ स्वार्थ (interests) जो समूह के प्रत्येक सदस्य के लिए समान हों ।

५- समूह के प्रत्येक सदस्य के मन में राष्ट्र के चित्र से सम्बद्ध कुछ अंश तक समान भाव व इच्छा हो[२]।

सारांश यह कि विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से राष्ट्रीयता की व्याख्या की है,परन्तु इस बात को सभी मानते हैं कि एक सुनिश्चित भूभाग में निवास करने वाले व्यक्ति जिन्होंने एक सामूहिक सांस्कृतिक परम्परा को विकसित किया है तथा जो एक समूह के रूप में ही रहना व स्वशासित होना चाहते हैं या हैं, एक राष्ट्र को निष्पन्न करते हैं । इसप्रकार के राष्ट्र की भावात्मक सत्ता का नाम ही राष्ट्रीयता

१- Nationality in History & Politics by Frederick Hertz, p. 3.4.11 .

२- Nationalism(Report) of the Royal Institute of International Affairs.

उक्त विशेषताओं के विस्तृत विवेचन के लिए उक्त प्रस्ताव के १४ अध्याय को देखो ।

है जो भौगोलिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकताओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। उक्त एकताओं की ऐतिहासिक परम्पराओं को ही राष्ट्रीयता के प्रतिमान माना जा सकता है। राष्ट्रीयता के उक्त प्रतिमान राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्त एवं सिद्ध तो करते ही हैं, साथ ही ये आगे राष्ट्रीयता की भावना के विकास में उपकारक भी सिद्ध होते हैं।

२.० भारतीय राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता के सामान्य विवेचन के पश्चात् अब भारतीय राष्ट्रीयता के विषय में विचार करना तर्कसंगत होगा, क्योंकि इसके विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। भारतीय गणतंत्र की स्थापना हो जाने के पश्चात् भारत के एकराज्यत्व एवं स्वराज्यत्व के विषय में अब किसी प्रकार की शंका के लिए अवकाश नहीं रहा है। परन्तु ऐसे विद्वान्[१] अवश्य हैं जो भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने को तत्पर नहीं हैं। सर जौन स्टैंची के अनुसार भारतवर्ष के विषय में अनिवार्यत: ज्ञातव्य तथ्य यही है कि यूरोपीय विचारानुसार किसी भी प्रकार की भौतिक या राजनैतिक एकता से सम्पन्न भारत न एक राष्ट्र है और न था।[२] ऐसे विद्वान भी हैं जो वर्तमान काल में तो भारत को एक राष्ट्र मानते हैं परन्तु प्राचीन काल में किसी भी प्रकार उसे एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने को तत्पर नहीं हैं।[३] इन विद्वानों के अनुसार प्राचीन भारत में एक राजनैतिक समुदाय बनने के लिए कोई समान आदर्श नहीं था। यहां के निवासियों ने कभी एक राष्ट्र बनने की भावना का अनुभव नहीं किया, और न ही यहां कभी धार्मिक जातीय, भाषायी

१- India the most Dangerous Decades By Selig S. Harrison, pp. 13, 16

२- उद्धृत Fundamental Unity of India (Introduction) -By Radha Kumud Mukherji, p.6.

३- Nationalism (Report by Royal Institute of International Affairs . p. 150

या अन्य किसी प्रकार की एकता सम्पन्न हुई है[1]। भारतवर्ष नाम इस प्रायद्वीप का था न कि राष्ट्र का[2]। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में कभी एकच्छत्र शासन के न होने के कारण राष्ट्रीयता की भावना थी ही नहीं[3]। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम समुचे भारत पर एकच्छत्र शासन किया तथा एक भाषा अंग्रेजी को समुचे देश में प्रचलित कर उसे राष्ट्र रूप में निष्पन्न किया[4]। इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने भारतीय राष्ट्रीयता के कुछ तत्व भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा में माने हैं, साथ ही अंग्रेजी शासन को भी आधुनिक राष्ट्रीयता के भाव में कारण भुत माना है[5]।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीयता की ऐतिहासिकता के विषय में अनेक विद्वान शंकाशील हैं तथा आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना का एक मात्र कारण अंग्रेजी साम्राज्य और प्रशासन को मानते हैं। अत: यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संक्षेप में यहां भारतीय राष्ट्रीयता के ऐतिहासिक स्वरूप के विषय में विचार कर लिया जाय।

यह सत्य है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता सम्बन्धी आधुनिक विचारधारा का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं मिलता। यद्यपि राष्ट्र आदि शब्द राजनीति शास्त्र में पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त मिलते अवश्य हैं परन्तु आज उनका प्रयोग हमारी भाषाओं में बहुत कुछ नये अर्थ में हो रहा है। जिस प्रकार प्राचीन साहित्य में इन शब्दों का अस्तित्व इनके आधुनिक अर्थ को सिद्ध नहीं करता उसी प्रकार राष्ट्रीयता की आधुनिक विचार धारा का प्राचीन भारत में अज्ञान राष्ट्रीयता की मुलभुत भावना का अभाव भी सिद्ध नहीं करता। आशय यह कि राष्ट्रीयता नाम

१- Nationalism versus Communalism By N.S. Bapat, p. 2.

२- Ibid,p.2.

३- Nationalism (Report by Royal Institute of International Affairs,London,p. 151.

४- Ibid, p. 151.

५- Asian Nationalism and West Edd. William L. Holland,p. 52.

की किसी विशेष सुविचारित भावना की चेतना या सिद्धान्त के अभाव में भी प्राचीन भारत में वे सभी तत्व विद्यमान थे जिन्हें पहले राष्ट्रीयता के प्रतिमान सिद्ध किया गया है । अर्थात् प्राचीन भारत में हमें वे सभी प्रकार की एकताएं मिल जाती हैं जो राष्ट्रीयता की भावना को न केवल अभिव्यक्त, निष्पन्न एवं सिद्ध करती हैं वरन् उसे प्रमाणित भी करती हैं ।

परन्तु भारतीय राष्ट्रीयता की भावना पाश्चात्य राष्ट्रीयता की भावना से इसलिए मूलत: भिन्न कही जा सकती है कि भारतीय राष्ट्रीयता जहां मूलत: सांस्कृतिक एवं परिणामत: राजनैतिक है, वहीं पाश्चात्य राष्ट्रीयता मूलत: राजनैतिक तथा परिणामत: सांस्कृतिक है । इसीलिए भारत के राजनैतिक इतिहास में ऐसे अनेक कालखण्ड मिल जाते हैं जब यहां राजनैतिक एकता का सर्वथा अभाव रहा है । परन्तु ऐसे समयों में भी यहां सांस्कृतिक एकता अक्षुण्ण मिलती है । डा० सुरेन्द्र मित्तल की यह मान्यता युक्तियुक्त है कि भारत में प्राचीन काल में राष्ट्र शब्द का चाहे उस अर्थ में प्रयोग न किया जाता हो जिस अर्थ को आजकल Nation शब्द व्यक्त करता है अथवा जिस अर्थ में आजकल हिन्दी में राष्ट्र शब्द का प्रयोग होता है । परन्तु भारत में वह भावना अवश्य थी जिसे आजकल Nationality अथवा राष्ट्रीयता नाम से पुकारा जाता है ।[१] अर्थात् प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता का भाव था और सदा से वह अपनी संस्कृति पर आधारित एक राष्ट्र है ।[२]

यूरोप के प्राय: सभी देशों की राष्ट्रीयता बहुत कुछ राजनैतिक है क्योंकि वहां के प्राय: सभी देशों का सांस्कृतिक व्यक्तित्व मध्यकाल में तो विशेष रूप से एक ही था और आजकल भी बहुत कुछ एक सा है ।[३] रोमीय साम्राज्य के विघटन

१- भारत की राष्ट्रीयता : डा० सुरेन्द्र मित्तल, पृ० ६७ ।
(चयनिका - सं० कुं० चन्द्रप्रकाश सिंह) ।

२- वही, पृ० ७१ ।

३- Nationalism(Report by Royal Institute of International Affairs,London) , p. 10.

के पश्चात् यूरोप में विभिन्न राज्य स्थापित हुए एवं वे ही राज्य आगे चल कर विभिन्न राष्ट्रों के रूप में विकसित हुए हैं। विशेषकर पोलैन्ड के विभाजन तथा फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात्[१]। अत: राष्ट्रीयता के विषय में जो भी चिन्तन पश्चिम में हुआ है उसमें राजनैतिक दृष्टि ही प्रधान है इसीलिए भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप को समझने के लिए यह दृष्टि पर्याप्त नहीं मानी जा सकती।

इतिहास के आदि काल में ही भारत, भूभाग की विशालता तथा अनेकधर्म जातियों तथा जीवन दृष्टियों के सम्मिलन के कारण एक ऐसी समन्वयात्मक संस्कृति को जन्म दे चुका था कि जो उसकी राष्ट्रीयता का सहज आधार बनी[२]। तथा जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीयता के सभी अनिवार्य ऐक्य-विधायक तत्व आज हमें भारत में मिल जाते हैं[३]। भारतीय संस्कृति, वस्तुत: आज भारतीय राष्ट्रीयता का सहज आधार ही नहीं, पर्याय भी कही जा सकती है, जिसका मूल आधार विद्वानों ने समन्वय और सहिष्णुता माना है[४]। भारतीय संस्कृति कोल, किरात, निषाद, द्रविड, आर्य, हूण, यवन, गुर्जर आदि न जाने कितनी जीवन प्रणालियों और संस्कृतियों के अनारोपित सहज समन्वय का परिणाम ही है[५], जिसने सब कुछ[६] सहन और स्वीकृत कर सहिष्णुता को एक दार्शनिक महत्व प्रदान कर दिया है। परिणाम स्वरूप आज एकत्व में अनेकत्व भारत का प्रमुख लक्षण माना जाने लगा है[७]। इस एकत्व की व्याख्या भारत को एक राष्ट्र माने बिना की ही नहीं जा सकती जबकि अनेकत्व भूभाग की विशालता अनेक जातियों धर्मों के सह अस्तित्व के कारण

१- Grammar of Politics -Herald Laski, Ch. VI.

२- The Culture and Art of India -Radha Kama Mukharji,p. 23.

३- Spirit of Indian Culture - B.L.Atreya, p. 15.

४- Culture and Art of India - Radha Kamal Mukharji,p. 18.

५- Spirit of Indian Culture- B.L.Atreya, p. 13.

६- Ibid,p.13.

(तुलनीय है योग-वाशिष्ठ ३.६६.५१,५२)

७- Fundamentals of Hindu Faith and Culture -Dr.C.P.Ramaswami Aiyar,p.33.

सहज ही स्वाभाविक माना जायगा । इतने विशाल भूभाग में ऐसा एकत्व अन्यत्र नहीं मिल सकता ।

आशय यह कि समन्वय और सहिष्णुता के कारण जो सनातन भारतीय संस्कृति विकसित हुई है वही हमारी राष्ट्रीयता की मूल भित्ति है । अत: केवल राजनैतिक दृष्टि से विचार न कर जब हम सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि भारत प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र रहा है । अनेक राजनैतिक इकाइयों (राज्यों) तथा प्रशासकीय प्रणालियों के होते हुए भी अविभक्त भारत, जैसे प्रत्येक महान् शासक तथा जनता का सदा एक आदर्श रहा है[१] और अनेक शासकों ने इसे अपने जीवन में चरितार्थ कर बताया है[२] उसी प्रकार जाति धर्म भाषा आदि की भिन्नता कभी भारत की मूलभूत एकता में बाधक सिद्ध नहीं हुई[३]।

संसार के अधिकांश राष्ट्रों में केवल भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भाषायी एकता और इतिहास की समानता ही प्राय: पायी जाती है[४]। परन्तु भारत भौगोलिक दृष्टि से आदर्श राष्ट्र है तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर तो है ही साथ ही एक संस्कृति और एक भाषा की उसकी सुदीर्घ परम्परा भी है । अत: भारत में राष्ट्रीयता की भावना की सुदीर्घ परम्परा के विषय में किसी भी प्रकार की शंका नहीं की जा सकती । भारतीय राष्ट्रीयता की समस्त आधार भूत एकताओं यथा भौगोलिक एकता, राजनैतिक एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता आदि की सुदृढ़ सुदीर्घ परम्पराओं का उद्घाटन डा० राधाकमल मुखर्जी, डा० राधाकुमुद मुखर्जी डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० राधाकृष्णन्, डा० अबिद हुसेन, डा० कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी आदि वरिष्ठ विद्वानों द्वारा हो चुका है अत: यहां उनके विषय में विशेष कुछ भी न कह कर हम भारतीय राष्ट्रीयता के उपेक्षित

१- History of Dharma Shastra, By Dr. P.V.Kane, Vol.III, p.137.

२- Indian Inheritance By K.M.Munshi, p. 89.

३- राष्ट्रीयता - गुलाबराय में डा० राधाकृष्णन् का उद्धरण, पृ० १८ ।

४- The National Culture of India By Abid Husain, pp.5,6.

प्रतिमान - "एक भाषा और एक साहित्य की परम्परा "का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे तथा इस परम्परा में हिन्दी का स्थान तथा उसकी राष्ट्रीय परम्परा का परिचय प्रस्तुत करेंगे।

३।० भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतिमान

भारत भूमि तथा उसकी सार्वजनीन मूलभूत एकता ही भारतीय राष्ट्रीयता है। अत: जिन जिन माध्यमों से वह अभिव्यक्त हुई हो वे सभी उसके प्रतिमान कहे जायेंगे। भारत भूमि की एकता ने सदा से अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को बचाये रखा है, जिसकी अभिव्यक्ति के प्रभूत प्रमाण भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं।[२] राष्ट्रीयता की भावना के लिए यद्यपि विद्वानों ने एक भाषा का होना अनिवार्य नहीं माना, साथ ही विश्व के अनेक राष्ट्रों में आज भी एकाधिक भाषाएं मिलती हैं।[३] परन्तु कुछ विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के वैविध्य को भारतीय राष्ट्रीयता के अभाव का कारण माना है[४]। ऐसे विद्वानों की मान्यता है कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में कोई भी अखिल भारतीय भाषा नहीं थी[५] अत: अंग्रेजी के आगमन के पश्चात ही भारतीय राष्ट्रीयता विकसित हुई है।[६] परन्तु भारतीय साहित्य एवं भाषा की परम्परा का सम्यक् रीति से अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इतिहास के आदि काल से आज तक न केवल साहित्यिक एकता ही प्रवर्तमान रही है वरन् भाषायी एकता भी अत्यंत सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। साहित्यिक एकता तथा भाषायी एकता भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबलतम वास्तविक प्रतिमान हैं, जिनकी परम्परा में हिन्दी का स्थान तथा महत्त्व यहां निरूपित किया जायगा।

१- भारत की मौलिक एकता - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४।

२- वही, पृ० १०।

३- भारत सरकार राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन, १९५६, पृ० १०।

४- Nationalism Versus Communalism -N.S.Bapat, p.2.

५- Nationalism (Report by the Royal Institute of International Affairs,London. P. 151.

६- Ibid,p. 151.

३।१ भारतीय भाषायी एकता - परम्परा और हिन्दी

भाषा विज्ञान की यह सुनिश्चित मान्यता है कि कोई दो व्यक्ति कभी एक समान भाषा नहीं बोलते तथापि, प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय में एक ही भाषा का ही उपयोग करता है। ऐसी स्थिति में भाषायी एकता एक विरोधमूलक सत्य ही प्रतीत होती है। वस्तुत: भाषा अपने प्रयोग काल में तो व्यक्ति व्यक्ति के साथ भिन्न होती है परन्तु उसके प्रयोग क्षेत्र (विषय) से सम्बद्ध उसकी कुछ मूलभूत स्वरूपात्मक विशेषताएं ऐसी होती हैं जो उसे एकत्व प्रदान कर देती हैं। ऐसी एकत्व विधायिनी मूलभूत विशेषताओं से युक्त किसी भाषा का प्रयोग-क्षेत्र व विषय यदि समग्र राष्ट्र तथा राष्ट्रीय महत्व के सभी विषय हों तो हम उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह राष्ट्र के नागरिकों द्वारा सहज स्वीकृत भी हो, शासक वर्ग द्वारा आरोपित नहीं/स्वदेशी या विदेशी शासक वर्ग द्वारा आरोपित भाषा राज्यभाषा कहलाती है, राष्ट्रभाषा नहीं। इसी प्रकार कुछ विशिष्ट अखिल देशीय समुदायों द्वारा भी कभी कभी कोई विशिष्ट भाषा किन्हीं विशिष्ट विषयों के लिए स्वीकृत कर ली जाती है, जिन्हें हम अखिल देशीय भाषा तो कह सकते हैं परन्तु न तो इन्हें हम राष्ट्रभाषा कह सकते हैं और नहीं राज्यभाषा। इसके साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि प्रत्येक विशाल भूभाग में उक्त भाषा रूपों के अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय या क्षेत्रीय भाषा, उपभाषा एवं बोली आदि भी होती हैं। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में अनेक भाषा, उपभाषा और बोलियों का होना सहज स्वाभाविक है। प्राचीन काल में यहां अनेक भाषाएं रही होंगी, परन्तु संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश एवं तामिल के अतिरिक्त आज हमें किसी भी अन्य भाषा के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, क्योंकि उक्त भाषाओं के अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषा में साहित्य नहीं मिलता। उक्त भाषाओं के साहित्य में यत्रतत्र प्राचीन भारत की भाषायी स्थिति का जो वर्णन मिलता है, उससे भी यही ज्ञात होता है कि भारत में विभिन्न जनपदों की विभिन्न बोलियां थी, परन्तु साहित्यिक भाषायें इतनी नहीं थी, जितनी आज हैं। आज विश्व के प्रसिद्ध तेरह भाषा

परिवारों में से चार भाषा परिवारों की भाषाएं यहां बोली जाती हैं।[१] मुंडा तथा मोट-चीनी परिवारों की भाषाएं सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से तो महत्वहीन हैं ही, साथ ही आज उनके बोलने वालों की संख्या भी नगण्य है। भारोपीय एवं द्रविड परिवारों की भाषाएं ही आज भारत की प्रमुख भाषाएं हैं। यद्यपि ये भाषाएं दो भिन्न भाषा परिवारों की भाषाएं हैं, परन्तु इनके रूप एवं शब्द समूह में अत्यधिक समानता है[२]। आज इनके रूप ऐसे घुल मिल गये हैं कि कुछ विद्वान् इन्हें दो भिन्न परिवारों की भाषा मानने को तैयार नहीं है[३]। उत्तर भारत की भाषाओं में संस्कृत के विपरीत प्रत्ययों के स्थान पर परसर्गों के प्रयोग को, विद्वानों ने, द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव माना है[४]। मध्यकालीन अनेक तामिल लेखकों ने तामिल भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से मानी है[५]। आधुनिक आर्य एवं द्रविड भाषाओं[६] के स्वरूप पर आज संस्कृत और तामिल का प्रभाव प्राय: सभी विद्वान मानते हैं। डा० एम० वरदराजन् की मान्यता है कि मूल द्रविड भाषा प्रागैतिहासिक काल में समस्त भारत में बोली जाती थी। आधुनिक दक्षिण भारतीय भाषाएं सीधी उक्त मूल द्रविड भाषा से विकसित हुई हैं जबकि आधुनिक उत्तर भारतीय भाषाएं उसी मूल द्रविड़ भाषा से उत्पन्न हो कर विदेशी शब्दों और भाषा रूपों के मिश्रण के कारण बहुत कुछ बदल गयी है[७]। आशय यह कि भारतीय आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं में परस्पर इतना अधिक साम्य है कि हम उसे भारतीय राष्ट्रीयता की एकता तथा उसके प्रतिमान के रूप में सहज ही स्वीकृत कर सकते हैं।

१- भारत सरकार राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन, १९५६, पृ० १७।

२- Pre-Historic South India - V.R.R.Dikshitar, p. 179.

३- The Aryan Origin of Tamil - K.M.   ,p.6.

४- Introduction to the Science of Linguistic, Sayce, p.174.

५- Tamil Language - Prof. S.Ilakkuvanar,p. 32.

६- Studies in Dravidian Philology- Ramakrichnich,pp.9-10.

देखिए Tamil Language- S.Ilakkuvanar, p. 10.

७- Indian Literature - Ed.by Dr. Nagendra,p.7.

तथा देखिए Tamil Language - S.Ilakkuvanar, p.10.

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि प्राचीन तामिल भारतवर्ष की प्रथम भाषा है जो भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व सारे देश में बोली जाती थी[१]। लेकिन उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत से पूर्व भारत में कोई अखिल देशीय भाषा थी या नहीं, और यदि थी भी तो वह कौन सी थी। परन्तु वैदिक काल से ले कर मुसलमानों के भारत में साम्राज्य स्थापित कर लेने के समय तक एक ही राष्ट्रभाषा थी और वह थी संस्कृत। यह उचित ही है कि विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को राष्ट्रीय साहित्य कहा है[२] क्योंकि वह भारत की प्रथम प्रमाणिक राष्ट्रभाषा है। संस्कृत के अतिरिक्त प्राचीन भारत में पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और तामिल भाषाएं अवश्य मिलती हैं, परन्तु इनमें से किसी को राष्ट्रभाषा नहीं कहा जा सकता है। ई० पू० ४०० में लिखे गये प्रसिद्ध तामिल व्याकरण ग्रंथ तोल्कप्पियम् से ज्ञात होता है कि उस समय तामिल का क्षेत्र उत्तर में तिरुवेंकटम् (अर्थात् तिरुपति) से ले कर दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक ही था[३]। आज इसका क्षेत्र और भी अधिक सीमित हो गया है। इससे सिद्ध है कि तामिल अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समान भारत की एक प्रान्तीय भाषा ही है और थी भी, यद्यपि उसमें साहित्य सृजन की परम्परा बहुत पहले से मिलने लगती है, परन्तु उसका विषय विस्तार संस्कृत की तुलना में अत्यन्त सीमित ही कहा जायगा। साथ ही तामिल भाषी प्रदेश में भी २०० ई० से ही संस्कृत राजभाषा के रूप में स्वीकृत कर ली गयी थी[४] तथा शिक्षा-दीक्षा, प्रशासकीय और सांस्कृतिक कार्यों में ही नहीं वरन् शिष्ट काव्य एवं शास्त्रों के प्रणयन में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होने लगा था। इस समय के सारे शिला-लेख संस्कृत में ही मिलते हैं[५]। इससे सिद्ध होता है कि तामिल भाषी प्रदेश ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया था।

१- Tamil Language - S.Ilakkuvanar, p.8.

२- भारत की मौलिक एकता - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १० ।

३- Tamil Language - S.Ilakkuvanar, p. 18.

४- Ibid, p. 38.

५- Ibid, p.38.

संस्कृत के पश्चात पाली भारत की प्रथम अन्त:प्रादेशिक या अखिल भारतीय भाषा कही जा सकती हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों में अशोक के शिलालेख इस बात को सिद्ध करते हैं कि उस समय देश के सभी प्रान्तों में यह भाषा समझी जाती थी। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों की भाषा के रूप में संस्कृत को स्वीकृत न कर इस भाषा को स्वीकृत किया था। परिणाम स्वरूप बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के साथ साथ एक प्रकार से पाली अखिल भारतीय भाषा बन गयी थी। परन्तु इसे राष्ट्रभाषा इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह एक धार्मिक सम्प्रदाय विशेष की भाषा बन कर रह गयी। इसीलिए इसमें बौद्ध धर्म के धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त और किसी प्रकार का साहित्य नहीं मिलता। बौद्ध धर्म के अनुयायी सम्राट् अशोक तथा उसके परवर्ती कुछ अन्य राजाओं ने कदाचित् इस भाषा का प्रशासकीय कार्यों में प्रयोग किया था। इसीलिए अशोक के समय से लेकर २५० ई० तक पाली या प्राक् महाराष्ट्री प्राकृत में सारे भारत में शिलालेख मिलते हैं।[१]

जिस प्रकार पाली बौद्ध धर्म की भाषा बन कर अखिल भारतीय भाषा बन गयी थी[२] उसी प्रकार अर्ध मागधी जैन धर्म की भाषा बन कर सारे भारत में जैन मतावलम्बियों की सामान्य भाषा बन गयी थी[३]। परन्तु पाली के समान ही धार्मिक सम्प्रदाय विशेष की भाषा होने के कारण इसे भी हम राष्ट्रभाषा न कह कर भारत की एक अखिल भारतीय भाषा ही कह सकते हैं। जिस प्रकार महाराष्ट्री प्राकृत, जिसे शौरसेनी प्राकृत का ही एक विकसित रूप माना जाता है[४], ललित साहित्य की एक अखिल भारतीय शैली मात्र रही, उसी प्रकार अपभ्रंश भाषा भी काव्य भाषा के एक अखिल भारतीय रूप तक सीमित रही। अपभ्रंश भाषा में जैन साधुओं तथा बौद्ध सिद्धों द्वारा रचित धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त और जो भी साहित्य मिलता है[५] वह लोक साहित्य के धरातल का ही है। परिनिष्ठित शिष्ट

१- ~~Kamikk~~ Epigraphy - D.R.Bhandarkar, p.204.

२- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास(पूर्व पीठिका)-सं० डा० राजबली पांडेय,पृ०२७८।

३- जैन गुर्जर कविओं(प्रथम भाग) -मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृ० १३।

४- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास(पूर्व पीठिका)-सं० डा० राजबली पांडेय,पृ०२६३।

५- वही, पृ० ३३२।

साहित्य की गरिमा उसमें दृष्टिगोचर नहीं होती । आशय यह कि पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का प्रचार क्षेत्र किसी प्रांत विशेष तक सीमित नहीं था और न ही उनके साहित्य के लेखक और पाठक किसी प्रान्त विशेष की सीमाओं में बंधे हुए थे, परन्तु इन भाषाओं को इन भाषाओं के प्रयोग - प्रयोजन के एक देशीय होने के कारण इन्हें संस्कृत के समान भारत की राष्ट्रभाषा नहीं कह सकते । इसीलिए इन भाषाओं के जीवन काल में संस्कृत भाषा के प्रयोग, विनियोग, स्थान, महत्व आदि किसी में किसी प्रकार की कमी देखने को नहीं मिलती । जिस प्रकार पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाएं धर्म अथवा काव्य के कारण अखिल भारतीय भाषाएं बन गयी थी उसी प्रकार अरबी फारसी और अंग्रेजी को विदेशी शासकों ने प्रशासकीय प्रयोजनों से अखिल भारतीय भाषा अवश्य बना दिया था, परन्तु इन भाषाओं की केवल किसी एक विषय के लिए सीमित क्षेत्र में प्रयोग होने के कारण इन्हें भी हम राष्ट्रभाषा नहीं कह सकते ।

राष्ट्रभाषा का प्रयोग, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राष्ट्रीय महत्व के सभी विषयों के लिए समग्र राष्ट्र द्वारा स्वेच्छा से होता है । अर्थात् राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ साथ ज्ञान विज्ञान के सभी विषयों और शिष्ट-काव्य के लेखन के लिए तो राष्ट्रभाषा का प्रयोग होता ही है साथ ही वह राष्ट्र के अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में भी काम आती हैं । संस्कृत भाषा और साहित्य के इतिहास तथा उसके प्रयोग की परम्परा और विस्तार के अध्ययन से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि मुसलमानों के आगमन तथा भारत में उनके साम्राज्य-स्थापन के समय तक संस्कृत भारत की एक मात्र राष्ट्र भाषा थी । मुसलमानों के आगमन के पश्चात् संस्कृत भाषा के प्रयोग का क्षेत्र सीमित अवश्य हो गया किन्तु उसका महत्व बहुत समय तक बना रहा । संस्कृत भाषा के विषय में संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मोनियर विलियम के ये शब्द अक्षरशः सत्य है, उन्होंने कहा है कि "यद्यपि भारत में पांच सौ से अधिक बोलियां प्रचलित हैं, परन्तु हिन्दुत्व को मानने वाले सभी व्यक्तियों के लिए, चाहे वे कितनी

ही जाति, कुल, मर्यादा, सम्प्रदाय और बोलियों की भिन्नताओं से युक्त क्यों न हों, सबके लिए सर्व सम्मति से स्वीकृत और समादृत एक ही पवित्र भाषा और साहित्य है और वह भाषा है संस्कृत और वह साहित्य है संस्कृत साहित्य । जो वेद अर्थात् समस्त ज्ञान का एक मात्र आश्रय है, जो हिन्दू दैवत ज्ञान, दर्शन, धर्मशास्त्र या विधि शास्त्र और गल्प शास्त्र की एक मात्र वाहिका है, एक ऐसा दर्पण है जिसमें समस्त हिन्दू सम्प्रदाय, उनकी मान्यताएं, आचार व्यवहार रूढ़ियां यथार्थत: प्रतिबिम्बित होती हैं । वह एक ऐसा रत्नाकर है जिससे भारतीय भाषाओं के विकास तथा महत्वपूर्ण धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समस्त आवश्यक सामग्री उपलब्ध की जा सकती है"[१]।

संस्कृत भाषा का मूल उद्गम स्थान भारत का कौन सा प्रदेश है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । प्राचीन वैदिक साहित्य में मध्यदेशीय भाषा की अनेक स्थानों पर प्रशंसा की गयी है । शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि कुरू पंचाल प्रदेश की भाषा आदर्श भाषा है[२]। इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण में एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि जो भाषा सीखना चाहता है उसे उत्तर दिशा की ओर जाना चाहिए या जो उस दिशा से आता हो उससे भाषा सीखनी चाहिए[३]। इस प्रकार के उल्लेखों से एक बात निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक काल में मध्यदेश, जिसे आर्यावर्त और ब्रह्मर्षि देश भी कहा गया है, भाषा की दृष्टि से आदर्श स्थान था[४]। अत: मध्य देश, संस्कृत भाषा का यह उद्गम स्थान नहीं तो, विकास स्थान अवश्य रहा होगा । क्योंकि प्रारम्भ से ही यह प्रदेश संस्कृति का सर्वाधिक प्रमुख केन्द्र रहा है[५]। अत: सांस्कृतिक दृष्टि से

१- Hinduism By Moniar William quoted by R.K.Mukharji in Indian Inheritance, Vol.II(Ed.by K.M.Munshi), p.91.

२- शतपथ ब्राह्मण ३।२।३।१५ ।

३- कौषीतकी ब्राह्मण ७।६ ।

४- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग -सं० डा० राजबली पांडेय, पृ० १।१।५

५- शौरसेनी की प्राचीन परम्परा -सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या(कन्हैयालाल पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ), पृ० ७७ ।

प्रधान और भौगोलिक दृष्टि से केन्द्रस्थ प्रदेश की भाषा का भारत की राष्ट्रभाषा बन जाना सहज स्वाभाविक प्रतीत होता है।[१] संस्कृत भाषा केन्द्रस्थ होने के कारण भारतीय संस्कृति की सहज वाहन बन गयी। संस्कृत भाषा के इतिहास के अध्ययन से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमें न केवल धार्मिक और ललित साहित्य ही लिखा गया, वरन् उसमें धर्मनिरपेक्ष वैज्ञानिक विषय यथा गणित, राजनीति, अर्थशास्त्र, रसायन, भूमिति, भूगोल, ज्योतिष, दर्शन, नीति, शिल्प, विभिन्न कला, काव्यशास्त्र एवं काम शास्त्र आदि विषयों पर भी प्रभूत साहित्य लिखा गया है। शिक्षा का माध्यम तो संस्कृत भाषा थी ही, प्रशासकीय सब कार्य भी संस्कृत भाषा में ही होते थे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समस्त भारत को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति तथा भारतीय राष्ट्रीयता की प्रबलतम अभिव्यक्ति एवं प्रतिमान के रूप में संस्कृत भाषा की परम्परा अविच्छिन्न रूप में लगभग दो सहस्राब्दियों तक मिलती है।[२]

भारतीय इतिहास के आदि काल से मुसलमानों के आगमन तक राष्ट्रीय एकता की अविच्छिन्न भाषायी परम्परा के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से ज्ञातव्य रहती है कि इस युग की समय सीमा में हमें तामिल के अपवाद के साथ कोई भी प्रान्तीय भाषा संस्कृत के विरोध में राजनैतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक महत्व के कार्य में भी प्रयुक्त नहीं मिलती। आज भारत में जितनी प्रान्तीय भाषा या क्षेत्रीय बोलियां हैं कदाचित् प्राचीन भारत में वे उनसे अधिक ही होंगी, परन्तु राष्ट्रीय एकता के धार्मिक आग्रह तथा प्रान्तीय अभिमान के अभाव के कारण ही एक राष्ट्र एक भाषा का सिद्धान्त भारत में अक्षरश: चरितार्थ होता रहा। इस युग की समय सीमा में हमें पाली प्राकृत आदि जो अखिल भारतीय भाषाएं मिलती हैं वे भारतीय राष्ट्रीयता के भाषायी एकता के प्रतिमान को और भी अधिक पुष्ट व प्रमाणित करती हैं। उक्त अखिल भारतीय भाषाओं और संस्कृत, हिन्दी राष्ट्र भाषाओं में यह समानता अवश्य दृष्टिगोचर होती है कि ये सभी भाषाएं

---

1. Indian Inharitance, Vol. II - By R.K.Mukherji(Ed.K.M.Munshi) p. 91.

२- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग - सं० डा० राजबली पाण्डेय, पृ० २।१।२५५।

मध्यदेशीय हैं,[१] साथ ही जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इन भाषाओं में रचित साहित्य का सम्बन्ध किसी प्रान्त विशेष से न होकर समूचे राष्ट्र से रहा है।

भारत में विदेशी शासन के स्थापित होते ही विशुद्ध राजनैतिक और प्रशासकीय कारणों से क्रमश: तीन विदेशी भाषाएं अखिल भारतीय भाषाओं के रूप में स्थापित हुई अरबी, फारसी और अंग्रेजी। वस्तुत: ये भाषाएं भारतीय जनता पर आरोपित की गयी थी, इसीलिए भारतीय संस्कृति इनमें प्रतिबिम्बित न हो सकी। उक्त विदेशी भाषाओं ने संस्कृत को उसके सार्वभौम आसन से च्युत कर प्रान्तीय भेद भाव को जागृत होने का अवकाश प्रदान कर दिया था,[२] परन्तु इसी समय प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में परिनिष्ठितभाषा के रूप में स्थापित हो जाने के बाद भी हिन्दी का अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में समानान्तर भाषा के रूप में स्थान बना रहा। परिणाम स्वरूप दीर्घ विदेशी दासता के समय में भारतीय राष्ट्रीयता का भाषायी एकता का प्रतिमान अविच्छिन्न बना रहा। आशय यह कि भारतीय इतिहास के प्राक्-मुसलमान-काल तक राष्ट्रीयता का भाषायी एकता का प्रतिमान एक राष्ट्र और एक राष्ट्र भाषा अर्थात् संस्कृत के रूप में तथा मुसलमान काल से आज तक समानान्तर राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी के रूप में निरन्तर दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् मुसलमान काल तक भारत के प्रत्येक प्रान्त ने अपनी अपनी एक एक भाषा पूर्णत: परिनिष्ठित रूप में स्वीकृत कर ली थी, परन्तु शासन द्वारा वहिष्कृत एवं अनाश्रित हिन्दी को भारतीय जनता ने सामूहिक रूप से अंतर्प्रान्तीय व्यवहार, एवं धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में समानान्तर राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया था।

१- शौरसेनी की प्राचीन परम्परा - सुनीति कुमार चाटुर्ज्या (पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ), पृ० ७६।

२- जैन गुर्जर कविओ, प्रथम भाग - श्री मोहनलाल दली चंद देसाई, पृ० १५।

भारत की राष्ट्रभाषाओं तथा अखिल भारतीय भाषाओं की उपरोक्त परम्परा में हिन्दी का आज वही स्थान है जो प्राचीन काल में संस्कृत का था। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कथन है कि "अपने देश से प्रेम रखने वाले, जो भारतीय राष्ट्र को एक और अखंड मानते हैं, वे अवश्य स्वीकार करेंगे कि हमारी राष्ट्रीय, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक एकता के लिए हिन्दी भाषा एक बड़े भारी कार्य का साधन है - यहां तक कि मैं इस छिन्न और विक्षिप्त देश में तो, संस्कृत के बाद हिन्दी को ही ईश्वर के आशीर्वाद स्वरूप मानता हूं"।[१] हिन्दी की आज जो स्थिति है उसके कारण रूप में उसका मध्यदेशीय होना तो है ही, साथ ही उसके और भी अनेक धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कारण हैं[२]। भारतीय राष्ट्रीयता के प्राचीन प्रतिमान संस्कृत का हिन्दी अभिनव आधुनिक रूप है। क्योंकि एक ओर वह संस्कृत की समस्त सांस्कृतिक परम्परा का पूर्णत: संवहन कर रही है, जो हिन्दी के पूर्व कोई मध्यदेशीय भाषा इतनी सम्पूर्णता के साथ नहीं कर पायी थी[३], दूसरी ओर वह इतर प्रान्तीय भाषाओं के समानान्तर अविरोधत: समस्त आधुनिक चेतना को अभिव्यक्त करने में सक्षम सिद्ध हो रही है।

हिन्दी आज अखिल भारतीय भाषा के रूप में निष्पन्न नहीं हुई, वरन् वह प्रारम्भ से ही अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में विकसित हुई है[४]। प्रारम्भ से ही हिन्दी भारत के सभी प्रान्तों में न केवल बोली व समझी जाती है, वरन् उसमें प्राय: समस्त प्रान्तों के अहिन्दी भाषी लेखकों द्वारा साहित्य सृजन हुआ है[५]। मध्यकाल में ही अनेक प्रान्तों ने हिन्दी[६] को संस्कृत आदि भाषाओं के समान शिष्ट भाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया।

१- शौरसेन की प्राचीन परंपरा - सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ), पृ० ७६।

२- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग - सं० डा० राजबली पांडेय, पृ० ५।

३- वही, पृ० २५५।

४- The Linguistic Survey of India- Dr. Griarson, Vol.9, Part I, p.44.

५- सप्तम् हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण, पृ० १४।

६- गुजराती भाषा नी उत्पत्ति - वसंत, मासिक पत्र, अाश्विन, १६७०, पृ० २५।

विद्वानों की मान्यता है कि ८वीं शताब्दी में जब अरबों ने भारत पर अधिकार किया तो भारतीय मंत्रियों को राज काज सौंप कर राजकीय कार्यालयों में ब्राह्मण कर्मचारी ही नियुक्त किये थे, जिससे हिन्दी का चलन बना रहा।[१] अकबर के समय में टोडरमल ने सरकारी दफ्तरों से हिन्दी को निकाल कर फारसी को स्थान दिया। फिर भी अकबर के शासन में हिन्दी भाषा का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि स्वयं अकबर के अपना लेने से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी, वह सचमुच भारत की राष्ट्रभाषा बन गयी। दक्षिण में बहमनी राज्य के सरकारी दफ्तरों में उसे स्थान प्राप्त हुआ और हिन्दी हिन्द की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी।[२] विद्वानों की मान्यता है कि गुरु नानक ने अपने भ्रमण काल में बंगाल, आसाम, द्वारका, जगन्नाथ, लंका, मक्का, मदीना और तिब्बत आदि प्रदेशों में जो उपदेश दिए थे, उनकी भाषा हिन्दी ही थी।[३]

दक्षिण भारत में मुसलमानों के प्रवेश के पश्चात् तो हिन्दी का वहां खूब प्रचार हुआ ही परन्तु उससे भी पहले हिन्दी दक्षिण भारत में पहुँच चुकी थी।[४] सन् १७६५ में बंगाल सरकार के कैप्टिन क्लंट द्वारा चांदा जिले में हिन्दी बोलने वालों का उल्लेख मिलता है।[५] इसी प्रकार सन् १७६६ में बंगाल के गवर्नर के आदेशानुसार किसी टी० मोट्टे नामक अंग्रेज अधिकारी ने बस्तर, कांकेर आदि स्थानों की यात्रा की थी, जिसके वर्णन में उसने लिखा है कि वहां धारा प्रवाह हिन्दी में बात करने वालों को देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था।[६] इसीलिए विद्वानों ने उचित ही हिन्दी को भारत की सर्वजनीन भाषा कहा है।[७]

१- हैदराबाद में हिन्दी - श्री मधुसूदन चतुर्वेदी, पृ० २३।

२- कचहरी की भाषा और लिपि - श्री चन्द्रबली पांडे, पृ० १२।

३- सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण, पृ० ६४।

४- भारतीय इतिहास संशोधन मंडल, पूना, जिल्द, १, सं० २,३, पृ० ३४।
हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, -आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ० ३६ पर उद्धृत।

५- British Relation with Nagpur State in 18th Century, p.126.
हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - आचार्य विनयमोहन शर्मा - पृ० १३ पर उद्धृत।

६- Early European Travellers in Nagpur Territories, p.132.
हिन्दी को मराठी संतों की देन -आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ० १३ पर उद्धृत।

७- Indo-Aryan-Rajendra Lal Mitra, Vol.II, p.308.

मध्य काल में राजनैतिक कारणों से हिन्दी को प्रशासनिक भाषा बनने का अवसर नहीं मिला, परन्तु उस समय के प्राय: सभी राजा महाराजा तथा सामंत आदि न केवल इस भाषा को अच्छी तरह जानते थे, वरन् अपने भावों और विचारों को भी इस भाषा में भलीभांति अभिव्यक्त कर सकते थे।[१] परवर्ती काल में हिन्दी भाषी प्रदेशों में ही नहीं वरन् हैदराबाद जैसी दक्षिण भारतीय रियासतों में भी हिन्दी अपनी उर्दू शैली में राज भाषा भी बन गयी। अत: आज हिन्दी को भारतराष्ट्र की राष्ट्र भाषा[२] कहना एक इतिहास सापेक्ष सत्य है, कोई काल्पनिक यथार्थ या मतवाद नहीं।

हिन्दी के एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में होने के अतिरिक्त हिन्दीतर अन्य समस्त भारतीय भाषाओं में इतना अधिक साम्य है कि केवल भारत में एकाधिक भाषाओं के आज साहित्यिक रूप में स्थापित हो जाने के कारण उसे अराष्ट्र नहीं कहा जा सकता। संसार में ऐसे राष्ट्र हैं जहां न केवल एकाधिक साहित्यिक भाषाएं प्रचलित हैं वरन् एकाधिक भाषाएं राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हैं।[३] साथ ही भारतीय आर्यभाषाओं में ही नहीं, द्रविड भाषाओं में भी परस्पर इतना अधिक साम्य है कि विद्वानों ने इन्हें विभिन्न भाषा कहने की अपेक्षा भारतीय संस्कृति के एक ही जीवन तत्त्व से अनुप्राणित विभिन्न बोली कहना अधिक उपयुक्त समझा है।[४] प्रसिद्ध भाषा शास्त्री काल्डवेल का कथन है कि "भारतीय भाषाओं की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि जैसे जैसे ये परिनिष्ठित भाषा के रूप में विकसित होती हैं इनकी साहित्यिक शैली बोलचाल की सामान्य भाषा से भिन्न अपनी शब्द-राशि और व्याकरणिक विशेषताओं के साथ एक भिन्न बोली के रूप में निष्पन्न होने लगती है"[५] जो परस्पर अत्यधिक निकट है। समस्त भारतीय

१- Lingua Indiana - Swaminath Sharma, p.6.

२- तुलनीय है : शौरसेनी की प्राचीन परम्परा - डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७५।

३- Psycholinguistics - Ed. Sol Soparta, p. 2.

४- Gujarat and its Literature (Intro.) K.M.Munshi, p.XXIII.

५- Comparative Grammer of Dravidian Languages -Dr.Coldwell, p.81.

भाषाओं की शब्द राशि मुख्यत: संस्कृत पर आधारित होने के कारण तथा अनेक भाषावैज्ञानिक व्याकरणिक समानताओं के कारण भारतीय भाषाएं परस्पर इतनी अधिक समान हैं कि उनकी बोली गत भिन्नताओं को छोड़ दिया जाय तो वे एक ही भाषा की विभिन्न शैलियां लगती हैं। आशय यह कि भारतीय भाषाएं जैसे जैसे विकसित होती हैं उनमें परस्पर निकट आने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है दूर जाने की नहीं। वास्तव में यह भारतीय राष्ट्रीयता की एकत्व मूलक भावना की सहज अभिव्यक्ति एवं सिद्धि दोनों हैं। सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् के ये शब्द अक्षरश: सत्य हैं कि "भारत अपनी मूल चेतना में एक है, चाहे वह कितनी ही जातियों और सम्प्रदायों में बंटा है। भारतीय समान सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भाषायी भेद कभी बाधक सिद्ध नहीं हुआ"[१]।

सारांश यह कि न केवल भारत में प्राचीन काल में तामिल के अपवाद के साथ केवल अखिल भारतीय भाषाएं ही मिलती हैं और वर्तमान काल में समस्त भारतीय भाषाओं में आश्चर्यजनक समानता है, वरन् भारतीय इतिहास के आदि काल से मुसलमानों के आगमन के समय तक राष्ट्र भाषा के सभी लक्षणों से युक्त संस्कृत राष्ट्र भाषा के रूप में मिलती है तथा उसके बाद विदेशी सम्राटों की नितान्त उपेक्षा तथा व्यावहारिक विरोध के होते हुए भी हिन्दी प्रारम्भ से ही समूचे राष्ट्र की एक चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भारत के प्राय: सभी प्रान्तों द्वारा प्रयुक्त होती आ रही है। राष्ट्रीयता की भावना के लिए विद्वानों ने भाषा की एकता को अनिवार्य नहीं माना, परन्तु भारत में न केवल आज भाषायि एकता दृष्टिगोचर होता है वरन् उसकी सुदृढ़ सुस्पष्ट सुदीर्घ परम्परा भी मिलती है, अत: यह कहा जा सकता है कि भारत प्राचीन काल से एक राष्ट्र है और राष्ट्रीयता के प्रतिमान - भाषायी एकता की जो प्राचीन परम्परा मिलती है, हिन्दी उसकी, अपनी ऐतिहासिक परम्परा के साथ आधुनिक सिद्धि है।

१- राष्ट्रीयता के पृ० १८ पर उद्धृत - डा० गुलाबराय।

२- भारत सरकार राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन, सन् १९५६, पृ० १०।

३।२ साहित्यिक एकता- परम्परा और हिन्दी

भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतिमान भाषायी एकता का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात जब हम भारतीय साहित्य की एकात्मता एवं उसमें अभिव्यक्त भारत की मूल भूत एकता पर विचार करते हैं तो यह नितान्त निश्चित हो जाता है कि भारत अपने सांस्कृतिक - जागरण के प्रथम दिवस से ही राष्ट्र है । भारत का इतिहास भारतीय साहित्य के इतिहास के पश्चात् ही प्रारम्भ होता है, एवं जब से भारतीय साहित्य का प्रारम्भ होता है तभी से उसमें भारतीय एकता के पुष्कल प्रमाण मिलने लगते हैं । अथर्ववेद का प्रसिद्ध पृथ्वी सूक्त भारत भूमि की एकता का प्रथम प्रतिपादन माना जा सकता है[१]। अनेक ब्राह्मण ग्रन्थों में आसमुद्र भारत का एक राष्ट्र के रूप में उल्लेख मिलता है[२]। अनेक स्मृति ग्रंथों तथा महाभारत एवं इतर पौराणिक साहित्य में समान रूप से न केवल भारत का वर्णन मिलता है वरन् इस भूमि के प्रति प्रेम और गौरव का भाव अनेकानेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है[३]। यह निश्चित है कि यह साहित्य विभिन्न समयों पर देश के विभिन्न प्रान्तों में लिखा गया है परन्तु उसमें कहीं भी प्रान्तीयता को प्रश्रय नहीं मिला है वरन् सदा देश की एकता तथा आचरण की समानता पर ही बल दिया गया है[४]। आश्वलायन गृह्य सूत्र की यह घोषणा कि "यत् तु समानं तद् वक्ष्यामः[५], "भारतीय आचरण संहिता के मूलाधार साहित्य धर्मशास्त्र की शाश्वत आधार भूमि रही है । शताब्दियों से भारत के प्रत्येक लेखक के लिए भारतवर्ष उसके भाव और विचारों का एक ऐसा केन्द्र-विन्दु रहा है कि उसे भारतीय राष्ट्रीयता का निर्भ्रान्त प्रमाण माना जा सकता है[६]।

१- अथर्ववेद १२।१।४५, तुलनीय है भारत की मौलिक एकता - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६ ।

२- ऐतिरेय ब्राह्मण, ८।१५ तुलनीय है ।

३- Indian Inheritance Vol.II.Fundamental Unity of India By Radha Kamal Mukharji, Ed. K.M.Munshi.

४- History of Dharmashastra -P.V.Kane, Vol.III, p.137.

५- Ibid, p.137.

६- Ibid, p.138.

श्री राधा कुमुद मुखर्जी ने तो भारतवर्ष नाम को ही भारतीय एकता का प्राचीनतम प्रतीक माना है[1]। आशय यह कि भारतीय एक राष्ट्रीयता की पुष्कल अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य में पायी जाती है[2]। यह साहित्य चाहे जिस काल में चाहे जिस प्रान्त में एवं चाहे जिस भाषा में लिखा गया हो परन्तु उसकी अन्तरात्मा एक है उसमें सर्वत्र एवं सदा एक समान भाव, विचार एवं आदर्श की विवृत्ति दृष्टि-गोचर होती है[3]। भारतीय साहित्य के वैविध्य एवं विशालता के साथ उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम की एकता तथा उसके स्वरूप और वस्तु की समानता[4] सहज ही सिद्ध की जा सकती है। डा० कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी के अनुसार भारतीय साहित्य में प्रवर्तमान एकता भारतीय राष्ट्रीयता का एक और प्रबलतम प्रतिमान है[5]।

जिस प्रकार हमने भारत की भाषायी एकता को भारतीय राष्ट्रीयता के एक प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठापित कर स्पष्टत: सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारत में आदि काल से आज तक राष्ट्र भाषाओं के रूप में भाषायी एकता बनी रही है तथा हिन्दी आज उसी परम्परा में होने के कारण तथा प्रारम्भ से ही अपनी अखिल भारतीय परम्परा के कारण अपने राष्ट्र भाषा रूप के ऐतिहासिक यथार्थ को सिद्ध करती है। अर्थात् हिन्दी आज किसी अधुनातन आवश्यकता के कारण बलात् राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत नहीं है वरन्[6] ऐतिहासिक रूप से विकसित, परम्परा प्राप्त, सहज स्वीकृत राष्ट्रभाषा है। उसी प्रकार भारतीय

१- Fundamental Unity of India(Intro.) -Radha Kumud Mukharji, p.XIV

२- भारत की मौलिक एकता - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १० ।

३- Gujarat and its Literature(Intro.), p.XXIII.

४- Indian Literature -Ed. Dr. Nagendra, p.2.

५- Gujarat and its Literature(Intro.) p.XXIII.

६- शौरसेनी की प्राचीन परम्परा - डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७६ ।

साहित्य में प्रवर्तमान समानताएं भी यही सिद्ध करती हैं कि भारत एक राष्ट्र है, क्योंकि उसके समूचे साहित्य की आत्मा शुद्ध भारतीय है, उसमें प्रान्तीय, भेदभाव दृष्टिगोचर नहीं होता । भारतीय साहित्य के आधार पर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय संस्कृति की एकता का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि "सत्य तो यह है कि न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन् जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी इतिहास के प्रत्येक युग में संस्कृति का ढांचा और व्यवस्था भिन्न भिन्न प्रान्तों में एक सी पाई जाती है । जिस प्रकार मौर्य युग की कला, वेश भूषा, साहित्यिक शैली और धार्मिक प्रवृत्तियां प्रान्तीय भेदों से ऊपर सारे देश में एक जैसी देखी जाती हैं, वही सचाई आर्थिक क्षेत्र में भी थी, और यही तथ्य गुप्त युग या मध्य युग में भी सही है । राज्यों के बटवारों से युग-संस्कृति की एकसूत्रता में भेद नहीं देखा जाता ।[१] इसीलिए उन्होंने अन्यत्र संस्कृत साहित्य को राष्ट्रीय साहित्य कहा है ।[२] वस्तुत: संस्कृत साहित्य ने हिमालय से सेतु तक और रत्नाकर से महोदधि तक समस्त भारतवर्ष को एक सूत्र में पिरो कर ऐसी राष्ट्रीय एकता स्थापित की है जो अन्यत्र दुर्लभ है ।[३]

संस्कृत के अतिरिक्त प्राचीन भारत में जो पाली, प्राकृत आदि अखिल भारतीय भाषाओं में साहित्य मिलता है उसके विषय में भी वही सत्य है जो संस्कृत के विषय में है । क्योंकि इन भाषाओं में लिखे गये साहित्य को हम किसी प्रकार किसी एक प्रान्त या राज्य से सम्बद्ध नहीं कर सकते । परन्तु संस्कृत साहित्य और अन्य अखिल भारतीय भाषाओं के साहित्य में थोड़ा बहुत अंतर है जिसे संक्षेपत: निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :

१- संस्कृत तथा पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश के साहित्यिक रूपों में स्वरूपात्मक अन्तर है ।

१- भारत की मौलिक एकता - डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० १२४ ।

२- वही, पृ० १० ।

३- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० डा० राजबली पांडे - पृ०२।१।२५५ (पूर्व पीठिका)

२- संस्कृत तथा पाली आदि भाषाओं की साहित्यिक शैलियों में अन्तर है ।

३- संस्कृत साहित्य में नागर-जीवन-दृष्टि का प्राधान्य मिलता है जबकि पाली आदि भाषाओं के साहित्य में लोक जीवन दृष्टि प्रधान है ।

४- संस्कृत भाषा में वैज्ञानिक विषयों पर प्रभुत शास्त्रीय साहित्य मिलता है जबकि पाली आदि भाषाओं में वह नहीं के बराबर ही है ।

५- संस्कृत साहित्य में एक प्रकार की सर्वाश्रयता है अर्थात् उसमें सभी धार्मिक मतों व सम्प्रदायों, विशिष्ट एवं सामान्य लोक-दृष्टियों, अपने युग के समस्त विषयों को लेकर विराट् साहित्य सृजन हुआ है जो पाली आदि भाषाओं में दृष्टिगोचर नहीं होता है । परन्तु संस्कृत और पाली आदि के साहित्य में जो अन्तर बताया गया है वह राष्ट्रभाषा और केवल अखिल देशीय भाषा का अन्तर है । जहां तक इन सब की भारतीयता का सम्बन्ध है, इनमें किसी प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि इनके बीच का अन्तर गुणात्मक न होकर मात्रा या परिमाण का अन्तर है ।

आशय यह कि संस्कृत का समूचा पौराणिक साहित्य तथा पाली आदि भाषाओं का धार्मिक या लौकिक साहित्य भारत के सामान्य सर्वजनीन धार्मिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक विश्वासों का सामूहिक प्रतिनिधित्व करता है । उसमें किसी प्रकार के प्रान्तीय या अन्य किसी प्रकार के भेद भाव के दर्शन नहीं होते । भारत के समूचे शास्त्रीय साहित्य से जहां एक ओर विशेष दार्शनिक तथा

धार्मिक चिन्तन सरणियों और वैज्ञानिक विचार-धाराओं में विशिष्ट भारतीय दृष्टि के दर्शन होते हैं तथा चिन्तन के धरातल पर भारतीय एकता के पुष्ट प्रमाण प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होते हैं, वहीं दूसरी ओर पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में इस एकता के प्रति अनन्य धार्मिक निष्ठा दृष्टिगोचर होती है । इस देश का पुराणकार देश के प्रत्येक नगर, प्रत्येक नदी, प्रत्येक पर्वत से ही नहीं, वरन् प्रत्येक सरोवर और पोखर से भी परिचित है । देश की भूमि को भारतीय साहित्य में जो धार्मिक निष्ठा के आधार पर पवित्रता प्रदान की गयी है वह विश्व के साहित्य में अतुलनीय है । साथ ही यह समान रूप से समूचे भारतीय साहित्य की एक ऐसी विशेषता है जो प्रान्त, भाषा, धर्म आदि के भेदों से ऊपर है । अत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यिक रूपमें प्रतिष्ठित होने से पूर्व भारत में एकान्तिक रूप से साहित्यिक एकता थी । संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य को केवल भारतीय साहित्य के नाम से ही अभिहित किया जा सकता है, उसे किसी प्रकार किसी प्रान्त विशेष तक सीमित नहीं किया जा सकता ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में जब से साहित्य सृजन की परम्परा प्रारम्भ होती है तभी से भारत के प्राय: सभी प्रान्तों में हिन्दी साहित्य की परम्परा किसी न किसी रूप में मिलने लगती है । साथ ही भारत की प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यों में भी परस्पर ऐसी समानता है कि इस प्रवृत्ति को भारतीय राष्ट्रीयता के अभाव का प्रमाण नहीं कहा जा सकता ।

समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में, एक दो के अपवाद के साथ, लगभग एक ही युग में साहित्य सृजन की परम्परा प्रारम्भ होती है । लोक साहित्य की परम्परा कदाचित् इन भाषाओं में इस युग से पूर्व भी रही होगी परन्तु प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के परिणाम स्वरूप समान रस और रूप का साहित्य समस्त आधुनिक भारतीय

भाषाओं में मिलने लगता है। मूल प्रेरणा और चेतना के समान होने के कारण इन सभी साहित्यों में हमें समान आदर्श और प्रयोजन दृष्टिगोचर होते हैं।[१] प्रान्तीय साहित्यों की कथन शैली की एकता, कथ्य की एकता से पुष्ट होकर भारतीय साहित्य की मौलिक एकता ही सिद्ध करती हैं[२], जो भारतीय राष्ट्रीयता का प्रबल प्रतिमान है[३]।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है कि "आजकी तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी अपने पूर्व रूप में आन्त:प्रादेशिक भाषा के रूप में अखिल उत्तर भारत में फैली थी और तमाम आर्यभाषी लोगों में पढ़ीपढ़ाई और लिखी जाती थी"[४]। परन्तु आधुनिक शोधों के परिणाम स्वरूप जो सामग्री प्रकाश में आयी है उससे सिद्ध हो गया है कि मध्यकाल से ही हिन्दी न केवल अखिल भारतीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी वरन् उसमें साहित्य सृजन की परम्पराएं भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रारम्भ हो गयी थी। इतना ही नहीं वरन् प्राचीन भारतीय साहित्य की समूची चेतना को आत्मसात कर के नवागत अरबी फारसी जैसी अखिल भारतीय भाषाओं की स्वीकार्य विशेषताओं को ग्रहण कर हिन्दी मध्यकाल में ही भारतीय राष्ट्रीय साहित्य की आधार भूमि बन चुकी थी।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी को ही सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्राचीन भारतीय साहित्य का रिक्थ प्राप्त हुआ है। हिन्दी साहित्य के रूप, विस्तार, शैली, भाव एवं विचार राशि का सम्यक् रीति से अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल से पूर्व ही (आधुनिक काल में तो हिन्दीतर अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं ने भी हिन्दी के समान ही, प्राचीन भारतीय

१- Gujarat and its Literature (Intro.)-K.M.Munshi, p.XXIII.

२- Indian Literature(Intro.) - Dr. Nagendra, p.XXVI.

३- Gujarat and its Literature(Intro.)-K.M.Munshi, p.XXIII.

४- शौरसेनी की प्राचीन परम्परा - डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ७६।

साहित्य एवं विदेशी साहित्यों से अनेक भाव, विचार एवं साहित्यिक विधाएं प्राप्त की हैं, परन्तु आधुनिक काल से पूर्व प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में लोक साहित्य, भक्ति साहित्य एवं कुछ द्रविड भाषाओं में कुछ शिष्ट शास्त्रीय साहित्य ही मिलता है।) हिन्दी ने न केवल अपने सृजनात्मक साहित्य में ही संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य का उत्तराधिकार प्राप्त किया था[१], वरन् शास्त्रीय साहित्य का अवतार भी (स्वतंत्र और अनुवाद रूप में) अपने में कर लिया था। रीतिकाल में ही संस्कृत काव्यशास्त्र सम्पूर्णत: हिन्दी में उतर आया था, जो अन्य अधिकांश प्रांतीय भाषाओं में नहीं मिलता। काव्यशास्त्र के अतिरिक्त हिन्दी में संस्कृत के समान ही, संगीत, नृत्य, नाट्य, रसायन, राजनीति, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्रों पर अनेकानेक ग्रंथ लिखे जाने लगे थे। पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने एक स्थान पर लिखा है कि 'गोपाल, मथुरानाथ, जगन्नाथ, गणेश, गुलाब सिंह, तिरवा नरेश, नौने राम, सुखदेव मिश्र, फतेसिंह, गुरुदास, द्विज, राजा लक्ष्मण सिंह, भूपति, खुमान आदि अनेक ज्ञात अज्ञात कवियों ने ब्रजभाषा के भंडार को, सालहोत्र, जवाहरात की तौल विधि, चौसर चक्र, युद्ध के रीति रिवाजों का वर्णन, दफ्तर के कार्य विवरण, पक्षियों की चिकित्सा, धनुर्वेद, वाणिज्य-भेद, बागवानी, शतरंज खेलने की विधियां, जड़ी बूटियों का वर्णन, रत्न परीक्षा शकुन शास्त्र, पहलवानी, सभाओं के कायदा कानून, राजनीति, गणित आदि विविध कलाओं पर प्रचुर ग्रंथ रच कर भरा है।[२] 'रीतिकाल में इसी प्रकार धार्मिक आचार विचारों पर अनेक छोटे बड़े ग्रंथ लिखे गये हैं, जो आज भी हस्तलिखित रूप में प्राप्त होते हैं। हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य का इतिहास अभी लिखना शेष है।

१- हिन्दी साहित्य - डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (अपभ्रंश साहित्यार्थ), पृ० १५। हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (पूर्व पीठिका) - सं० डा० राजबली पांडेय (संस्कृत साहित्यार्थ),पृ० २।१।२५५ ।

२- गुजरात के ब्रजभाषी शुक पिक - पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी, पोद्दार अभि०ग्रंथ,पृ० ४२०-४२१ ।

भारत की प्राचीन राष्ट्रभाषा संस्कृत की समूची साहित्यिक परम्परा को जिस अंश तक हिन्दी ने आत्मसात कर उसे विस्तार प्रदान किया है, उस अंश तक किसी प्रान्तीय या अखिल भारतीय भाषा ने नहीं किया । डा० भोला शंकर व्यास ने उचित ही कहा है कि "संस्कृत की परम्परा को ठीक उतनी सफलता से न तो मध्यदेश की प्राकृत शौरसेनी महाराष्ट्री ही निभा सकी, न नागर अपभ्रंश ही, यद्यपि उन्होंने भी इस परम्परा को लुप्त नहीं होने दिया, उसकी धारा को जीवंत बनाए रखा । आज हिन्दी ने चौथी पीढ़ी में आकर अपनी प्राचीन कौटुम्बिक कीर्ति का सिंहावलोकन किया है, और वह प्रगति के पथ पर अग्रसर उस महान् आदर्श की ओर बढ़ चली है ।[१]"

हिन्दी का भक्ति काव्य जैसे संस्कृत के पौराणिक साहित्य का शुद्ध काव्य शास्त्रीय काव्य के रूप में सहज विकास ही है उसी प्रकार राज प्रशस्ति वाले तथाकथित वीर काव्य हिन्दी में संस्कृत से ही आये हैं । विद्वानों की मान्यता है कि यह परम्परा हिन्दी के आदि काल में संस्कृत साहित्य की धारा के समानान्तर बहती दिखाई पड़ती है । बाद में भी इसका प्रबन्ध रूप सूदन आदि कवियों में और मुक्तक रूप भूषण में परिलक्षित होता है । शृंगारी मुक्तक परंपरा, जिसके प्रतिनिधि अमरुक, जयदेव और गोवर्धन हैं, संस्कृत से ही सीधे रीतिकालीन कवियों में प्रकट हुई । सारांश यह कि संस्कृत की विषय सम्पत्ति ज्यों की त्यों, समग्र रूप में हिन्दी के हाथों सौंप दी गई ।[२] इतना ही नहीं संस्कृत की काव्य विधाओं, कथानक एवं अप्रस्तुत विधान सम्बन्धी रूढ़ियों, शैली, छंद प्रयोग आदि ने भी हिन्दी को विशेष रूप से प्रभावित किया है ।[३]

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (पूर्व पीठिका) - सं० डा० राजबली पांडे, पृ० २।१।२५५ ।

२- वही, पृ० २।१।२५६ ।

३- वही, पृ० २।१।२५६-२६२ ।

संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी को प्राकृत एवं अपभ्रंश जैसी अखिल भारतीय भाषाओं से भी ऐसे अनेक तत्व प्राप्त हुए हैं कि आज हिन्दी साहित्य सच्चे अर्थों में समूचे भारतीय साहित्य का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। प्राकृत का लोकोन्मुखी शृंगार काव्य हिन्दी रीति काव्य में विकसित अवस्था में देखा जा सकता है।[1] इसी प्रकार हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की अनेक रूढ़ियाँ, अभिव्यंजना शैलियाँ तथा छंदादि प्रयोगों का सीधा संबंध प्राकृत साहित्य से ही है।[2] अपभ्रंश साहित्य का जो रिक्थ हिन्दी को प्राप्त हुआ है वह सर्व विदित ही है।[3] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समूचे प्राचीन भारतीय साहित्यों का उत्तराधिकार तो हिन्दी को सहज ही प्राप्त हो गया था साथ ही मुसलमानों के भारत में निश्चित रूप से बस जाने के पश्चात अरबी और फारसी साहित्य के ग्राह्य तत्व भी हिन्दी [redacted] द्वारा आत्मसात किये गये हैं। हिन्दी को न केवल अनेकानेक मुसलमान कवियों व लेखकों ने समृद्ध किया है वरन् उसे उर्दू नामक एक नवीन शैली प्रदान कर उसके साहित्य को विस्तार तथा अभिव्यंजना को नवीन आयाम और भंगिमा प्रदान की है।

जिस प्रकार हिन्दी भाषा ऐतिहासिक दृष्टि तथा वर्तमान स्थिति से भारत की वास्तविक राष्ट्रभाषा है उसी प्रकार हिन्दी साहित्य अपने सच्चे अर्थों में भारत का राष्ट्रीय साहित्य है क्योंकि भारत के प्राय: सभी धार्मिक एवं सामाजिक वर्गों के ही नहीं वरन् सभी प्रान्तों के व्यक्तियों द्वारा इसकी श्रीवृद्धि हुई है। हिन्दी साहित्य किसी प्रकार किसी प्रान्त विशेष तक सीमित सिद्ध नहीं किया जा सकता। हिन्दी का प्रभूत प्राचीन साहित्य भारत के प्राचीन विद्या केन्द्रों, धार्मिक स्थानों, सांस्कृतिक नगरों तथा राजधानियों में आज भी हस्तलिखित रूप

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (पूर्व पीठिका) - सं० डा० राजबली पांडे, पृ० २।२।३०६ ।

२- वही, पृ० २।२।३०६-३११ ।

३- वही, पृ० २।३।३५७-३६३ ।

में प्राप्त होता है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में तक्त स्थानों पर हिन्दी का साहित्य पढ़ा लिखा जाता था । भारत सरकार या किसी अखिल भारतीय संस्था ने योजनाबद्ध रूप से हिन्दी साहित्य की अखिल भारतीय परम्परा के उद्घाटन का प्रयास नहीं किया है, फिर भी विद्वानों के सतत शोध प्रयासों के परिणाम स्वरूप जो सामग्री प्रकाश में आयी है उससे सिद्ध होता है कि हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि भारत के प्रत्येक प्रान्त के कवियों द्वारा हुई है । हिन्दी के आदिकाल का परिचय देने वाली प्राय: सभी कृतियां हिन्दी प्रदेश से बाहर ही लिखी गयी मिलती हैं[१]। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक `नाथ सिद्धों की बानियां` में जिन चौबीस नाथ सिद्धों की रचनाएं संग्रहीत की हैं उनमें से अधिकांश अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के निवासी हैं तथा इनका समय १४वीं शताब्दी से पूर्व माना है[२]। इससे सिद्ध होता है कि १४ वीं शताब्दी से पूर्व ही अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी साहित्य सृजन की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी । १३ वीं शताब्दी से पूर्वी भारत में ब्रजबुली साहित्य का परिचय मिलने लगता है[३]। नेपाल मोरंग से उपलब्ध नाटकों में हिन्दी गीतों के दर्शन १४वीं शताब्दी से होने लगते हैं, जबकि आसाम, उड़ीसा और बंगाल में १५वीं शताब्दी से यह परम्परा प्रारंभ होती है[४]। एक गुर्जर विद्वान् ने लिखा है कि जैसे पहले शौरसेनी पैशाची के कुछ प्रभाव के साथ कविता केवल महाराष्ट्री प्राकृत में ही होती थी उसी प्रकार परवर्ती काल में हिन्दी कवि संत लोक विनोद के लिए एकाध पद गुजराती पंजाबी आदि में लिखते थे परन्तु मुख्य रूप से कविता भाखा (हिन्दी) में ही करते थे । कविता की भाषा सर्वत्र एक ही थी[५]। महाराष्ट्र में हिन्दी काव्य की परम्परा

१- हिन्दी साहित्य कोश - डा० धीरेन्द्र वर्मा (संपादक), पृ० ६७ ।

२- नाथ सिद्धों की बानियां (भूमिका)- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६-२५ ।

३- ब्रजबुलि साहित्य - प्रो० राम पूजन तिवारी, पृ० ४ ।

४- वही, पृ० ४-५ ।

५- जैन गुर्जर कविओ (प्रथम भाग) - मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृ० १४ ।

के विषय में लिखते हुए आचार्य विनय मोहन शर्मा ने लिखा है कि "जो मराठी संत कवि - प्रतिभा सम्पन्न रहे हैं, उन्होंने मराठी के साथ हिन्दी पदों की स्वयं रचना की है, और जो केवल कीर्तनकार रहे हैं, उनकी मराठी अभंगों आदि के साथ किसी प्रसिद्ध हिन्दी संत के पद गाने की परिपाटी रही है"।[१] १३ वीं शताब्दी से महाराष्ट्र में खड़ी बोली में कविता मिलने लगती है तथा १६ वीं शताब्दी से ब्रजभाषा में भी प्रारम्भ हो जाती है।[२] पं० गणपति जानकीराव दुबे का कथन है कि "हिन्दी साहित्य प्रेमी समाज को यह सुन कर सचमुच केवल हर्ष ही नहीं किन्तु गर्व भी होगा कि हिन्दी के साहित्य पर महाराष्ट्र के कवियों का सर्वदा प्रेम रहा है। उन्होंने यदि अपनी मातृभाषा में बड़े बड़े ग्रंथ लिखे तो हिन्दी में कम से कम कुछ पद तो अवश्य लिखे होंगे।[३]" पंजाब में अनेकानेक हिन्दी कवियों का पता चला है तथा प्रारम्भ से सिक्ख सम्प्रदाय ने हिन्दी को अपनी धर्मभाषा के रूप में स्वीकृत कर हिन्दी के प्रसार में विशेष योगदान दिया है।[४] भारत के भक्त कवियों के विषय में लिखते हुए डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने कहा है कि "सहृदय भक्त मात्र बिना किसी प्रान्त भेद के तब तक अपनी वाणी की सार्थकता नहीं मानते, जब तक कृष्ण की जन्म भूमि की भाषा में ही, भगवान के सम्मुख आत्म निवेदन न कर लेते थे। नामदेव, एक नाथ, तुकाराम, नरसी मेहता, चंडीदास आदि सब मराठी, गुजराती, बंगाली वैष्णव सन्तों ने ब्रजभाषा में अपने उद्गारों को व्यक्त किया है।[५] इन प्रान्तों के अतिरिक्त विद्वानों ने सिन्ध, आसाम, उड़ीसा, काश्मीर आदि प्रान्तों में भी हिन्दी साहित्य-सृजन की परम्परा को स्वीकृत किया है।[६]

१- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - आचार्य विनय मोहन शर्मा, पृ० क(भूमिका)।

२- वही, पृ० न (भूमिका)।

३- सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्य विवरण, पृ० १७।

४- वही, पृ० ६४।

५- मकरंद - डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० ११७।

६- सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्य विवरण, पृ० १४।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि १३ वीं शताब्दी से हो हिन्दी साहित्य का अहिन्दी भाषी प्रान्तों में लिखा जाना प्रारम्भ हो गया था, साथ ही इस समय से पूर्व का भी जो हिन्दी साहित्य आज उपलब्ध है वह भी जैन एवं बौद्ध सन्तों द्वारा अहिन्दी भाषी प्रान्तों में ही मुख्य रूप से लिखा गया है। इतना ही नहीं वरन् सुदूर दक्षिण भारत में भी हिन्दी बहुत पहले पहुंच गयी थी। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि मुसलमान फकीरों, सैनिकों तथा राज्य संस्थापकों द्वारा हिन्दी दक्षिण भारत में पहुंची थी।[१] परन्तु "दक्खिनी का पद्य और गद्य के सम्पादक श्री राम शर्मा[२] तथा "दक्खिनी के सूफी लेखक" की लेखिका विमला वाघ्रे[३] इससे सहमत नहीं हैं कि दक्खिनी विशुद्ध रूप से मुसलमानों की पैदा की हुई भाषा है, जो सेना तथा शासन कार्य के लिए दक्षिण भारत में आये थे। उनका विचार है कि राष्ट्रकूटों (७ वीं शताब्दी) तथा यादवों (६ वीं शताब्दी) के साथ सहस्रों उत्तर भारतीय दक्षिण भारत में आये थे, उन्हीं के साथ जो उत्तर भारतीय भाषा उस समय दक्षिण भारत में लायी गयी थी उसी से आगे चल कर दक्खिनी का विकास हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार दक्षिण भारत में लिखी गयी हिन्दी कविता के सर्वप्रथम उदाहरण ११वीं शताब्दी में राजा मुंज के दोहे माने जा सकते हैं जो कल्याण के राजा तैलप के यहां कैद थे, तथा तैलप की बहिन मृणालवती से उनका प्रेम हो गया था।[४] मुसलमानों के दक्षिण भारत प्रवेश से पूर्व हिन्दी यहां स्थापित हो चुकी थी, परन्तु उसका रूप परिष्कृत नहीं था। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् उसने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रूप ग्रहण किया।[५] विद्वानों ने १४वीं शताब्दी से दक्षिण भारत में हिन्दी की साहित्यिक परम्परा का प्रारम्भ माना है।[६] यद्यपि गोलकुंडा, बीजापुर,

---

१- दक्खिनी हिन्दी -प्रकाशकीय निवेदन - डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ।

२- दक्खिनी का पद्य और गद्य - निवेदन - श्रीराम शर्मा, पृ० २५,२६ ।

३- दक्खिनी के सूफी लेखक (अप्रकाशित प्रबन्ध) - विमला वाघ्रे, पृ० ५ ।

४- हैदराबाद में हिन्दी - मधुसूदन चतुर्वेदी, पृ० १५-१६ ।

५- हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड) - सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा,आदि ,पृ० ५५६ ।

६- वही, पृ० ५५७ ।

हैदराबाद और बहमनी राज्य दक्षिण भारत में हिन्दी साहित्य के विशेष केन्द्र रहे हैं परन्तु त्रावणकोर, गुलवर्गा, वैलूर अरकाट आदि स्थानों पर भी हिन्दी लेखकों का पता चला है[१]। भारत के अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों के समान ही दक्षिण भारत में भी, योजना बद्ध रूप से शोध करने पर हिन्दी के अनेकानेक कवियों का पता लग सकता है। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी की साहित्यिक परम्परा के प्रमाण रूप में गुजरातेतर अहिन्दी भाषी प्रान्तों के हिन्दी कवियों की नामावली परिशिष्ट प्रथम में देखी जा सकती है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि जिस समय हिन्दी उत्तर भारतीय अहिन्दी भाषी प्रान्तों में साहित्य की भाषा के रूप में स्थापित हुई थी लगभग उसी समय दक्षिण भारत में भी वह साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी। आशय यह कि समूचे भारत में हिन्दी लगभग एक ही समय से साहित्य और सामान्य व्यवहार में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत की गयी थी और आज तक उसकी यह राष्ट्रीय साहित्यिक परम्परा जीवित है।

४ उपसंहार

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीयता की आधुनिक विचारधारा के अभाव में भी भारत, प्राचीन काल से ही अपनी भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकताओं के कारण एक राष्ट्र है। परन्तु भारतीय राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रारम्भ से ही मूलत: राजनैतिक न होकर सांस्कृतिक रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति उसके इतिहास की प्रत्येक धारा में दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय राष्ट्रीयता के अनेकानेक प्रतिमान निर्धारित किए जा सकते हैं परन्तु प्रस्तुत अध्याय में उसके भाषायी तथा साहित्यिक प्रतिमानों पर विचार किया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि :

१- देखिए परिशिष्ट प्रथम।

१- भारत में प्रारम्भ से मुसलमानों के आगमन के समय तक संस्कृत भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में मिलती है जो न केवल समूचे भारत में प्रचलित थी वरन् समस्त भारतीय ज्ञान विज्ञान एवं शिष्ट साहित्य की भाषा थी और उसका प्रयोग सभी राष्ट्रीय महत्व के प्रशासकीय, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में होता था ।

२- उक्त समय सीमा में तामिल के अपवाद के साथ किसी भी प्रान्तीय भाषा का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता । अपितु संस्कृत के अतिरिक्त क्रमश: पाली प्राकृत तथा अपभ्रंश जैसी अखिल भारतीय भाषाओं का प्रयोग मिलता है ।

३- उक्त सभी भाषायें मध्यदेशीय थीं , अत: वर्तमान मध्यदेशीय भाषा हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है, जिसके अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के प्रभूत प्रमाण मध्यकाल से ही मिलने लगते हैं ।

४- संस्कृत साहित्य के समान ही हिन्दी साहित्य अपने युग की समूची भारतीय चेतना का एकमात्र ऐसा दर्पण है जिसकी श्रीवृद्धि में भारत के प्रत्येक प्रान्त का योगदान है । साथ ही जिसको प्राचीन भारतीय साहित्य का सर्वाधिक दाय सर्वप्रथम प्राप्त हुआ है ।

५- अत: भारत एक राष्ट्र है और हिन्दी उसकी परम्परा-प्राप्त वर्तमान राष्ट्रभाषा है ।

हिन्दी साहित्य की अखिल भारतीय परम्परा में गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का उसके विशेष रूप से समृद्ध तथा पुष्ट होने के कारण, राष्ट्रीय महत्व के अतिरिक्त उसका साहित्यिक महत्व भी है । अगले अध्याय में उसका अध्ययन किया गया है ।